(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 अगस्त-2012 अंक-8

ध्यान शिविर में आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

दि० 8, 9 व 10 सितम्बर, 2012 (शनिवार, रविवार, सोमवार)
पंजाबी धर्मशाला (राजगुरु मार्केट), आर्य बाजार, हिसार
फोन : 9416164702, 9416041346

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

संत कबीर

परम तत्व

श्री राम सिंह पुनिया
मलापुर वाया आदमपुर, जिला हिसार

मध्यमकशास्त्र (18.1) में नागार्जुन ने परमतत्व का वर्णन इस प्रकार किया है :-

''अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैरप्रपञ्चितम्।
निर्विकल्पमनानार्थ मेदतत्दस्य लक्षणम्॥''

जिसका अनुभव दूसरे के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता, जहां सब भावों और वासनाओं का उपशम हो जाता है, जिसका वाणी के द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, जो चित्त की कल्पना से परे है, जिसमें नानात्व नहीं है: वही **परमतत्व** है। नागार्जुन ने इस तत्व के लिए 'शून्य' शब्द का प्रयोग इसलिए किया: क्योंकि वह वाणी और मन दोनों के लिए अगोचर है। जिसको नागार्जुन ने 'शून्य' कहा: तांत्रिक बौद्धों ने उसे 'सहज' कहना प्रारंभ किया।

सहज की अवधारणा : 'सहज' शब्द का अर्थ है '**सह जायते इति सहज:**'-अर्थात् जो साथ ही प्रादुर्भूत होता है: यह 'सहज' है। जो सब वस्तुओं का आंतरिक स्वरूप है, सबका मूलभूत सहज है, स्वभावसिद्ध है, साध्य नहीं है, जो कृत्रिम नहीं है, जो कार्य नहीं है, सदा सार रूप में विद्यमान है, जो देश-काल की सीमा से परे है,

एक शब्द में जो परमतत्व है: वह सहज है। सहज विश्वांतरवर्ती भी है और विश्वातीत भी है। वह अवाड्मनसगोचर है। वह मन और वाणी का विषय नहीं है। उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह 'स्वसंवेद्य' है: अर्थात् उसका केवल भीतर-ही- भीतर अनुभव किया जा सकता है।

जो सहज है: वही उपनिषदों का ब्रह्म है, वही निर्वाण धातु है, अश्वघोष की तधता है, नागार्जुन का शून्यतत्व है, विज्ञानवाद का 'अभूतपरिकल्प' और 'विज्ञप्तिमात्रता' है, वज्त्रयानियों का वज्त्रधातु है। वही 'बोधचित्त'

है। वही 'महासुख' है। वह अद्वय है, समरस है, गगनोपम है, 'खसम' है, शून्य है। उससे सब कुछ प्रादुर्भूत होता है। वह स्वयं किसी से प्रादुर्भुत नहीं होता। उसका न आदि है: न अंत। वह सहज हम में अंतरात्मा, प्रत्यगात्मा के रूप में विद्यमान है। वह देश, काल, मन, प्राण, पंचमहाभूत इत्यादि बंधनों से परे अपने स्वाभाविक सत्, चित्, आनंद रूप में घट-घट में विराजमान है।

जो सहज में विश्वास करते थे: वे 'सहजिया' कहलाने लगे। ईसवी दसवीं शती से परमतत्व और अंतरात्मा के लिए सभी पंथों में, सभी सम्प्रदायों में 'सहज' अथवा 'सहजशून्य' शब्द का बहुत प्रयोग होने लगा।

हरिरस पीया जाणिये, जे कबहूं न जाइ खुमार।
त्रेतंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार॥

क्या भगवत्प्रेम की मदिरा किसी ने पी है ?-यह समझना चाहिए: जब उसका नशा कभी न उतरे। पीने वाला: उसके नशे में मस्त होकर घूमता रहे और उसे अपने तन की भी सुध न हो। ❑

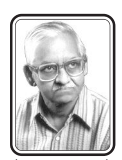
(1936-2009)

ईश्वर
(GOD)

✍ डॉ० शम्भू नाथ

समाज में हमेशा से नास्तिक और आस्तिक व्यक्तियों की बात की जाती रही है। ईश्वर में अविश्वास करना ज्यादा कठिन है; और विश्वास करना ज्यादा आसान। शायद समाज **आस्तिक** शब्द उन व्यक्तियों के लिए प्रयोग करता है: जो मान्यता प्राप्त स्थूल कर्मों के माध्यम से पूजा-पाठ में लगे रहते हैं। अर्थात् मान्यता प्राप्त कर्मों पर अन्धविश्वास (Ignorance) के आधार पर ईश्वर को मानते हैं।

लेकिन समाज में दूसरे वर्ग के व्यक्ति भी रहे हैं और ये वे व्यक्ति हैं; जो केवल उन चीजों को मानते हैं, जिनकी अनुभूति संभव हो और कम से कम इतना तो सभी को अनुभव होता है: कि इन्द्रिय जगत में न मालूम, कितनी ऐसी चीजें हैं: जिनकी उत्पत्ति मानव द्वारा संभव नहीं है। जैसे-चांद, सूरज, नक्षत्रगण, अनन्त तारे, वायु, अग्नि, गुरुत्वाकर्षण शक्ति, ठंडक, गर्मी इत्यादि। जिनकी उत्पत्ति मानव द्वारा असम्भव है। इनकी उत्पत्ति किसी शक्ति द्वारा तो है?

स्वयं मनुष्य का जीवन ऐसा है: जिसमें तरह-तरह की घटनाएं घटती रहती हैं और ये घटनाएं क्यों घटीं ? इसका उत्तर किसी को नहीं मिलता।

इस तरह की बातें मनुष्य को इस बात का आभास कराती हैं: कि बुद्धि से परे कोई शक्ति है। कोई ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है: जो ऐसी शक्तियों पर भी विश्वास न करे, ऐसा लेखक नहीं मानता। भले ही ऐसे व्यक्तियों को, चूंकि वह मान्यता प्राप्त कर्मों के माध्यम से कुछ पूजा-पाठ में व्यस्त नहीं है: समाज **नास्तिक** कहे। मात्र इन दूसरे तरह के व्यक्ति, ईश्वर या प्रकृति की शक्ति, जो ऐसे काम को भी कर सकती है: जो मनुष्य द्वारा संभव नहीं; की खोज की ओर भी अपने मन को ले जा सकते हैं। वे उन साधनाओं की खोज करते हैं: जिनके माध्यम से हम ईश्वर और ईश्वरीय शक्ति को महसूस कर सकें। एक दूसरा सत्य, जो ईश्वर की खोज में मदद करता है: वह यह है कि सबसे बड़ी शक्ति की खोज करना है।

बड़ी का अर्थ है: जो जीवन के अनन्त पहलुओं में असीम हो। इस शक्ति के विषय में एक मान्यता समाज में यह भी रही है: कि यह शक्ति सारे अस्तित्वों का आधार है। दूसरे शब्दों में बिना ईश्वरीय शक्ति के किसी भी चीज का अस्तित्व सम्भव नहीं है।

किसी भी वस्तु के अस्तित्व का अनुभव करने की शक्ति तो मात्र मन में

सम्भव है। जिसे मन महसूस कर लेता है: उसे वह मान लेता है कि यह है। लेकिन जिसे वह महसूस नहीं कर पाता: उसके विषय में उसके मन में एक प्रश्न उठता है; कि वह क्यों मान ले कि ऐसा कुछ है? यह सत्य हमें इस ओर इशारा करता है कि सबसे बड़ी शक्ति को महसूस करने की शक्ति तो मन में ही होगी।

यह सृष्टि दो भागों में बंटी है-इन्द्रिय जगत और इन्द्रिय से परेजगत।

इन्द्रिय जगत की हर चीज को मन इन्द्रियों के माध्यम से महसूस करता है। लेकिन कुछ अज्ञानी इन्द्रियों को ही महसूस करने वाला मानने लगते हैं। जैसे-हम कुछ देखते हैं: तो बार-बार कहते हैं कि हमारी आंखों ने देखा। इसी तरह हम कहते हैं कि हमारे कानों ने सुना। यद्यपि सत्य यही है कि मन ने आंख, कान या किसी दूसरी इन्द्रिय द्वारा अनुभव किया। अपने मन और बुद्धि को स्वयं हम तो महसूस करते हैं लेकिन इसे कोई दूसरा महसूस नहीं कर सकता।

> **कारण यही है: कि महसूस करने वाला तो कभी इन्द्रिय जगत में रहता ही नहीं। मन, बुद्धि और इन्द्रियों से काम लेने वाली शक्ति इन्द्रिय जगत में नहीं है। दूसरे शब्दों में इन्द्रियों से परेजगत में है।**

इन्द्रिय जगत की बड़ी-बड़ी शक्तियां भी दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं:

1. वे जिनका अस्तित्व सदा बना रहता है। उदाहरण के लिए जैसे वायु, अग्नि, पृथ्वी, सूर्य और नक्षत्रगणों की शक्तियां, अपने-अपने क्षेत्र में, अनादि और अनन्त हैं।

2. लेकिन विज्ञान के द्वारा उत्पन्न की हुई शक्तियां: जैसे ऐटम बम, हाईड्रोजन बम और राकेट इत्यदि की शक्तियां बुद्धि के जगत की बहुत बड़ी-बड़ी शक्तियां मानी जाती हैं; और यदि हम इन शक्तियों की

ओर अपना ध्यान ले जायें तो एक साधारण मनुष्य भी समझ लेता है: कि ये शक्तियां बुद्धि को इन्द्रिय जगत के सूक्ष्म पर्तों में ही मिली हैं। स्थूल जगत के पदार्थों के सब से सूक्ष्मकण: अणु और परमाणु के नाम से जाने जाते हैं और इन सूक्ष्म पर्तों की शक्तियों के माध्यम से ही:अणु और परमाणु बम बने।

इसी तरह से यदि हम पूरी सृष्टि को स्थूल और सूक्ष्म पर्तों में विभाजित कर सकें: तो सबसे शक्तिशाली शक्ति सबसे सूक्ष्म पर्त में ही मिलनी चाहिए।

> **ऊपर हमने देखा कि यह सृष्टि सूक्ष्म और स्थूल परतों में बंटी हुई है। लेकिन इन जगतों को महसूस करने वाला मन है। मन किसी भी अस्तित्व को मात्र विचारों के माध्यम से अनुवभ कर सकता है।**

मन इन्द्रिय जगत को जब महसूस करता है: तो कर्मेन्द्रियों को क्रियाशीलता भी महसूस होती है और यही क्रिया जगत की महसूसियत (Assumption) है।

> **लेकिन मन भावों के क्षेत्र में भी रहता है और यह प्रमाणित करता है: कि भावों के क्षेत्र का भी अस्तित्व है और भावों का यह क्षेत्र क्रियाओं के क्षेत्र से सूक्ष्म है।**

यह प्रमाणित करता है कि भावों के क्षेत्र की शक्ति क्रियाओं के क्षेत्र की शक्ति से नि:सन्देह बड़ी होगी। भावों का क्षेत्र दो हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. बुद्धि के अन्तर्गत उठते हुए भाव और
2. बुद्धि से परे के भाव !

क्रियाओं के क्षेत्र का हर भाव बुद्धि के अन्तर्गत ही होता है। भावों का क्षेत्र बुद्धि के अन्तर्गत भी है और बुद्धि से परे भी है। इन दोनों जगतों को

महसूस करना साधारण से साधारण मनुष्य के लिए सम्भव है। यह दूसरी बात है: कि आज के समाज में पराजगत के विज्ञान की, शिक्षा की कमी से मनुष्य को ये दोनों जगत दो रूप में नहीं दिख रहे हैं। बुद्धि से परे के भाव: निश्चय ही बुद्धि के अन्तर्गत उठते हुए भावों से भी ज्यादा सूक्ष्म पर्त के अस्तित्व के प्रमाण हैं। और इस पर्त में बुद्धि के अन्तर्गत उठते हुए विचारों की शक्ति और क्रियाओं के जगत की शक्ति से बड़ी शक्ति होनी चाहिए। बौद्धिक स्तर का विश्लेषण हमें बताता है कि यदि क्रियाओं का क्षेत्र और भावों का क्षेत्र अलग-अलग है: तो भावों की उत्पत्ति का क्षेत्र और भावों से परे के क्षेत्र के अस्तित्व का होना भी आवश्यक है। जो साधक लेखक के साथ पिछले दस-बारह वर्षों से साधना में व्यस्त हैं: वे अच्छी तरह जानते हैं कि

> **भावों से परे का क्षेत्र ही भावातीत क्षेत्र है और "ध्यान द्वारा जीवन की मौलिक शक्तियां" विचार उद्‌गम स्थान में हैं।**

और इसके अस्तित्व को समझाने की कोशिश भी लेखक अकसर करता है। हमने ऊपर यहभी देखा कि सारे अस्तित्वों की अनुभूतियों का आधार भाव होता है; इसीलिए भावातीत क्षेत्र की अनुभूति का प्रश्न ही नहीं उठता। जो कुछ भी अनुभव होगा उसे अनुभव करने वाला व्यक्त करने का प्रयास भी कभी न कभी करेगा। यदि यह अनुभूति सगुण-निराकार हैं: तो मात्र गुणों के रूप में व्यक्त करेगा। यदि सगुण और साकार है: तो गुण और आकार के रूप में व्यक्त करेगा।

> **लेकिन जो भावों से परे है, वह तो अनुभव से ही परे है और इसीलिए हमारे बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) का नामकरण भी किया: और इसे ब्रह्म बताया।**

ऊपर प्रमाणित हो चुका है कि यह ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। और

सूक्ष्मतम होने के कारण सर्व शक्तिशाली है और सारे अस्तित्वों का आधार भी है। इन्द्रिय जगत: निर्जीव वस्तुओं, वनस्पति, शक्तियों और प्राणियों से भरा है, लेकिन इस जगत में सारी शकितयां सगुण हैं। हमने ऊपर देखा कि

> **भावातीत क्षेत्र (TRANSCENDENTAL FIELD) या ब्रह्म तो निर्गुण-निराकार और सर्व शक्तिशाली शक्ति है। मात्र शक्ति ही कुछ देने योग्य होती है।**

इस तरह से यह प्रमाणित हुआ कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही इन्द्रिय जगत के अनन्त जगतों और इन्द्रिय से परे जगत का जन्मदाता है। इसीलिए यह 'परा से पराजगत' हुआ। समाज का एक साधारण व्यक्ति जितनी शक्तियों के विषय में सोच सकता है: वे सभी सगुण हैं। इसलिए वह ईश्वर को भी गुणों के क्षेत्र में ही खोजता है। सूक्ष्मता और स्थूलता की दृष्टि से पराजगत, इन्द्रिय जगत की तुलना में 'परा से परा' के ज्यादा समीप है।

> **समस्त शास्त्रों में ब्रह्म या ईश्वर की शक्ति को प्रकाश रूपी बताया गया है। अर्थात् यह प्रकाश निश्चय ही उस जगत में ज्यादा होगा, जो 'परा से परा' के समीप होगा। यही कारण है कि पराजगत: इन्द्रिय जगत से ज्यादा शक्तिशाली है।**

सत्य तो यह है: कि पराजगत इन्द्रिय जगत के अनन्त जगतों का आधार है और इन सारे जगतों को शक्ति देने वाला है। मात्र इन्द्रिय जगत में अस्तित्वों के चार रूप हैं। लेकिन हम अच्छी तरह जानते हैं कि पराजगत में वनस्पति की सम्भावना नहीं, निर्जीव वस्तुओं की सम्भावना नहीं और शरीर के साथ प्राणों की भी सम्भावना नहीं।

अत: पराजगत में मात्र शक्ति है। और इन्द्रिय जगत में जितने तरह के जीवन सम्भव हैं, हर तरह के जीवन को शक्ति देने वाला जगत: पराजगत है। मात्र मनुष्य का जीवन: न मालूम कितने पहलुओं में बंटा हुआ हे।

सत्य तो यह है कि हमारी जितनी भी तरह की इच्छाओं की सम्भावनाएं हैं: उतने रूप में शक्तियों की सम्भावनाएं भी हैं। इस तरह से समझना कितना आसान है कि

> **पराजगत अनन्त तरह की शक्तियों का जगत है। और स्वाभाविक है कि अलग-अलग तरह की इन सगुण शक्तियों का स्त्रोत निर्गुण भावातीत क्षेत्र है। पराजगत की ये शक्तियां पराजगत के देवता हैं।**

देवता का अर्थ है देने वाला। ये इन्द्रिय जगत को हर तरह की शक्ति प्रदान करते हैं। लेकिन वे अपनी शक्ति-निर्गुण निराकार ब्रह्म से लेते हैं। ऊपर हमने देखा कि देवता अलग-अलग पहलुओं की असीम शक्तियों को कहते हैं। और ये पहलू हमारे मन की भावनाओं या इच्छाओं की उत्पत्ति है। लेकिन इच्छाओं का आधार संचित कर्म इच्छाओं से भी सूक्ष्म है। कहने का अर्थ यह है कि

> **पहले ब्रह्म की शक्ति संचित कर्मों को मिलती है और इन संचित कर्मों के माध्यम से इच्छाओं से सम्बन्धित पराजगत के देवता को मिल जाती है।**

सन्त तुलसीदास की प्रसिद्ध चौपाई-

जो इच्छा करिहु, मनमांही।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥

भी इसी सिद्धांत की ओर इशारा करती हैं। हमारे साथ कुछ दिनों से साधना करने वाले साधक अच्छी तरह जानते हैं: कि प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास के समय मन में ब्रह्म की शक्ति उसी तरह से पिरो जाती है: जिस तरह से दिन के समय सूर्य की शक्ति पृथ्वी में पिरो जाती है।

> **मन में ज्यों-ज्यों ब्रह्म की शक्ति पिरोती है: यह शक्ति मन में विद्यमान संचित कर्मों और फिर इच्छाओं को मिल जाती है।**

और ये इचछाएं मन में बढ़ती हुई ब्रह्म की शक्ति के साथ इच्छापूर्ति की ओर उसी तरह से अग्रसर होती है: जैसे इन्द्रिय जगत में, पृथ्वी में बोया हुआ बीज अंकुरित होकर जड़ का रूप धारण करके पृथ्वी से शक्ति लेकर पेड़ के तना, डाली, पत्तियों, कलियों, फूलों और फलों की ओर अग्रसर होती चली जाती है। हमें यह ज्ञात है: कि वनस्पति जगत में पेड़ के किसी अंग की रचना की नहीं जाती; बल्कि हो जाती है। जीवन में न मालूम कितनी घटनाएं सृजित नहीं की जाती; हो जाती हैं। इसी तरह से अध्यात्म की शक्ति के माध्यम से हमारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करना: अनिवार्य नहीं है। कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म मात्र मन में पिरोयी हुई ब्रह्म की शक्ति की कमी के कारण करना पड़ता है: और यह कमी मात्र मन में होती है। अर्थात् साधना द्वारा मन को ब्रह्म की शक्ति से पूर्ण भी किया जा सकता है। और मात्र उस अवस्था में तुलसीदास द्वारा ऊपर उद्धृत चौपाई सत्य उतरती है। हम लोगों ने ऊपर देखा कि

> **ब्रह्म की शक्ति सबसे पहले मन में पिरोती है। अर्थात् मन ब्रह्म के जितने समीप रह सकता है, उतने समीप और कोई नहीं रह सकता। लेकिन हम यह भी जानते हैं: कि मन तो सुख का भूखा है। इसलिए यदि मन को ब्रह्म की ओर खींचना है: तो ब्रह्म की शक्ति को कोई विशेष सुख मन को प्रदान करना पड़ेगा।**

और कुछ समय से प्रयासहीनता का अभ्यास निरन्तर करने वाले कुछ साधकों को यह अनुभव भी है: कि अभ्यास का समय बीतने के साथ साथ मन में एक ऐसा सुख उभर रहा है, जिसके अनुभव के लिए मन

किसी इन्द्रिय की मदद नहीं लेता। यही **ब्रह्मानन्द** की परिभाषा है।

निश्चय ही जो मन ब्रह्म की शक्ति से पूर्ण होगा: उसे इन्द्रिय सुख अपनी ओर खींचने की अवस्था में नहीं रहेगा।

इसके विपरीत ज्यों-ज्यों मन में इस शक्ति की कमी होगी: मन जीवन के सभी सुखों को मात्र क्रियाओं के क्षेत्र में ढूंढेगा। गीता के अध्याय ९ का श्लोक 22 का संकेत भी यही है: कि जो भी **ब्रह्मानन्द** में लीन होगा, उसे अपने योग क्षेम के लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होगी। वे व्यक्ति जो ईश्वर को गुणों की दुनियां में ढूंढ़ रहे हैं: उन्हें ऐसे मन की तलाश है, जो मात्र ब्रह्म में लीन होकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति की शक्ति रखता हो।

जो मन मुझे भजते सदैव अनन्य भावापन्न हो।
उनका स्वयं मैं ही चलाता योग क्षेम प्रसन्न हो॥

जो लोग अनन्य भाव से मेरे दिव्य स्वरूप (Self Realization) का ध्यान करते हुए निरन्त मेरी पूजा करते हैं: उनकी जो आवश्यकताएं होती हैं, उन्हें मैं पूरा करता हूं और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूं। क्षेम का अर्थ है भगवान् द्वारा कृपामय संरक्षण। भगवान् योग द्वारा पूर्णतया भावातीत होने में सहायक बनते हैं और जब भक्त पूर्ण भावातीत (Transcendental) हो जाता है तो भगवान् उसे दुखमयबद्ध जीवन में फिर से गिरने मे ंउसकी रक्षा करते हैं। (9.22). ये बातें हमें बताती हैं: कि मन एक शक्ति नहीं है; बल्कि साधना द्वारा शक्तिवान हो सकता है।

तेरे भावैं जो करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठिक, अपनो भवन बुहार॥

मन शक्तिवान होकर क्रियाओं के क्षेत्र में जीवन व्यतीत करे। यह क्रियाओं के क्षेत्र में ब्रह्म की शक्ति प्रकट करने की कला है। इस तरह से हम साधना द्वारा अनुभव कर सकते हैं: कि ईश्वरीय शक्ति तो क्रिया

शक्ति से परे है। अर्थात् होने की शक्ति के रूप में है। और क्या होना है? यह शक्तिवान मन की इच्छाओं पर निर्भर करेगा।

प्रश्न उठता है कि इच्छाएं कहां से आएंगी ?

मन की आयु अनन्त वर्ष की होती है। इसलिए जिस समय मन शक्तिवान होता है: उसके पहले के जन्मों में भी कुछ स्थूल और सूक्ष्म कर्म होते हैं: अत: मन में कुछ संचित कर्म रहते हैं। इस तरह से हर मन में दो तरह की इच्छाओं की उत्पत्ति होती रहती है: कुछ इच्छाएं संचित कर्मों की देन होती है; और कुछ इच्छाएं इस जन्म के कर्मों की देन होती हैं। ज्यों-ज्यों मन में शक्ति बढ़ती है: संचित कर्मों द्वारा उत्पन्न इच्छाओं की निवृत्ति भी होने लगती है और धीरे-धीरे इस निवृत्ति के सहारे हम अपने पिछले संचित कर्मों से मुक्ति पा सकते हैं। हम पिछले संचित कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर लें और इस जन्म की उठती हुई इच्छाओं की निवृत्ति नित्य होती रहे: मात्र इस अवस्था के बाद ही कर्ममुक्ति सम्भव है। ऊपर कर्ममुक्ति की अवस्था को समझाने का प्रयास किया गया है। इस अवस्था तक पहुंचने के पश्चात् मनुष्य पूर्ण रूप से मुक्त: अर्थात् स्वतन्त्र हो जाता है। अपनी स्वतन्त्र इच्छा के आधार पर दो संभावनाएं होती हैं:-

1. वह चाहे तो फिर जन्म ले सकता है और ऐसे व्यक्ति अपने दूसरे जन्म में पैदा होते ही पूर्ण रूप से शक्तिशाली होंगे। समाज उन्हें ईश्वर या अवतार के रूप में ही जानेगा। और

2. दूसरी सम्भावना यह होगी कि वह दोबारा जन्म लेना ही न चाहे।

निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि हमें ईश्वर को जानना है: जो यह मात्र गुणों के माध्यम से ही संभव है और ये गुण-

1. **होने की शक्ति से पूर्ण होना।**
2. **ब्रह्मानन्द में लीन रहना तथा**

3. **समस्त इच्छाओं की पूर्ति तत्काल करने की शक्ति इत्यादि हैं।**

ये तीनों तरह की शक्तियों का कुछ अंश हर मनुष्य मे ंहोना अनिवार्य है। इसीलिए जीव को ईश्वर का अंश कहा जाता है। साधना द्वारा ये गुण जीव में बढ़ने लगते हैं और साधारण मनुष्य इसे साधना की प्रगति के रूप में पहचानता है। जो इस साधना में व्यस्त नहीं हैं: उपरोक्त गुणों का कुछ न कुछ अंश लेकर पैदा हुए होंगे। और समय बीतने के साथ उपरोक्त गुणों की कमी उनमें होने लगेगी: यह जीव के पतन का संकेत है। ऊपर जो कुछ बताया गया है: वह किसी एक व्यक्ति के लिए कहा गया है। ऐसा किसी क्षेत्र के जनसमूह में भी सम्भव है।

जब जनसमूह में उपरोक्त गुणों की शक्ति बढ़ती है: तब युग का उत्थान होता है। और जब उपरोक्त गुणों से सम्बन्धित शक्ति जन-समूह में कम होती है: तब पूरे युग का पतन होता है। ❑

जीवन का आधार

✍ महर्षि महेश योगी

सारे जीवन की समस्याओं के आधार पर ही क्षण भंगुर जीवन चल रहा है। इस क्षेत्र में, त्रिगुणात्मक क्षेत्र में रहते हुए: उन समस्याओं का हल है ही नहीं। इसलिए कि जीवन का स्वभाव ही ऐसा है: कि उन मौलिक समस्याओं पर ही आधारित होता है,

तब भगवान ने क्या किया ?

अर्जुन को दो क्षेत्रों का उपदेश किया; क्योंकि इस क्षेत्र में जो जीवन संसार का है: वह तो समस्याओं पर ही अवलम्बित है- समस्या विहीन हो ही नहीं सकता। इसलिये क्या किया-एक दूसरे जीवन का क्षेत्र दिखाया जो

त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रजो, एवं तमो गुण) नहीं है:

नित्य है, अविनाशी है, अखंड है, व्यापक है; जहां कि समस्यायें कुछ हो ही नहीं सकतीं;

इसलिये कि वह त्रिगुणात्मक नहीं है; पंचभूतात्मक नहीं है। इसलिये उस क्षेत्र का प्रभाव इस क्षेत्र में लाकर ही समस्याओं के बीच में रहते हुए भी उसे समस्याओं से मुक्त किया।

समस्यायें तो मिट ही नहीं सकतीं: जब तक जीवन है।

इसलिये यह युक्ति थी भगवान के उपदेश की: कि कुछ ऐसा करो कि वह त्रिगुणातीत भवातीत विशुद्ध सच्चिदानन्द का व्यापक क्षेत्र है; उसको इसमें ले आओ। वह इसमें बराबर पिरोया हुआ है। केवल उसका बोध नहीं है। जब बोध नहीं है: तो उसका लाभ नहीं हो रहा।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे वन माहीं।
ऐसे घट-घट में राम हैं, घट दुनियां देखे नाहीं॥

खजाना घर में भरा है-लेकिन यदि निकाला नहीं जा रहा- बोध नहीं है; भूल गये हैं: तो उससे लाभ नहीं हो रहा। वह नित्य शाश्वत अखण्ड क्षेत्र है: जो सबमें व्यापक है। केवल उसका भगवान ने बोध कराया है। उस युक्ति से काम लिया; कि जीवन समस्या विहीन हो ही नहीं सकता; तो फिर ऐसा कुछ करें; कि समस्याओं के क्षेत्र में एक बिना समस्या का क्षेत्र पिरो दें। उसका बोध हो जाय: जो जीवन की सहज स्वाभाविक स्थिति है। इस नश्वर क्षेत्र में वह अविनाशी क्षेत्र पिरोया हुआ है; और दोनों को मिला कर जीवन बना है। जीवन का ऐसा जो सहज स्वाभाविक स्वरूप है: उस स्वरूप को दिखा दिया। यही श्री मद् भगवद् गीता के उपदेश का मूल तत्व था।

अर्जुन के प्रश्न ऐसे थे: कि उनका उत्तर हो ही नहीं सकता?

इस क्षेत्र में रहते हुए, संसार के क्षेत्र में रहते हुए अर्जुन ने जो धर्म सम्बन्धी

प्रश्न उठाये हैं; उनका उत्तर तब मिलता है: जब धर्म सत्ता से मन जुटता है- यह रहस्य जो भगवान ने गीता (2.11) में हंस कर कह दिया।

''अशोच्यानन्व शोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे'

एक न सोचने योग्य को तुम सोच रहे हो: और बुद्धिमानों जैसी बड़ी-बड़ी बात करते हो। इसलिये कि धर्म सत्ता से अभी तुम्हारा सम्बन्ध तो हुआ ही नहीं है। धर्म के प्रश्न कर रहे हो-धर्म की बात कर रहे हो।

धर्म सत्ता कौन सी है ?

वह जो सब को (सब विश्व को) धारण करे। जैसे फूल को धारण करने वाला 'रस' है। पत्ता, फल, फूल, डाली सब को धारण करने वाला 'रस' ही है। ऐसे ही यह समस्त सृष्टि ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली-वही विशुद्ध चेतना ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द व्यापक चेतना है। तो वह चिदानन्द व्यापक सत्ता धर्म का स्वरूप है।

जिसका मन उससे नहीं जुटा: वह धर्मी कहां हुआ?

जो मन भावातीत (Transcendental) नहीं हुआ, धर्म सत्ता से नहीं लगा: तब वह धर्मी कहां हुआ? और धर्मी हुए बिना: धर्म की बड़ी लम्बी लच्छेदार बातें करना और समस्यायें खड़ी कर देना; कि 'भीष्म पितामह को कैसे मारूँ? ये पूज्य हैं' आदि।

भगवान ने कहा-क्या बात करता है लड़कपन की?

जिस क्षेत्र में प्रवेश नहीं-जिसका बोध नहीं, उसके लिए लम्बे-लम्बे सिद्धांत प्रस्तुत कर रहा है-

''अशेच्यानन्च शोचस्त्वं'' और कहां चलो ''निष्त्रैगुण्यो भवार्जुन''

तीनों गुणों से परे हो जाओ-निस्त्रगुण्य होने से क्या होगा? (2.11, 2.45) मालूम पड़ेगा कि जिनको हल न होने वाली समस्यायें मानता है-15 मूल समस्यायें जिनका यह जीवन ही बना है: जो ऐसे हल न होने

वाली समस्यायें हैं। फिर यदि बाजार में इतना फंसाव हो गया है; कि गुत्थी नहीं सुलझती तो कहते हैं: बाजार से हटो-बैंक में चलो, वहां बैठकर यहां की समस्या हल करेंगे। जिस क्षेत्र की समस्यायें होती हैं; उस क्षेत्र में इधर-उधर करके हल हो जाएं तो हो जाएं, पर यदि देखते हैं: कि हल नहीं होतीं, तो दूसरे क्षेत्र में जाते हैं। उधर से सहायता लेकर हल करते हैं।

यही तो होता है-एक देश दूसरे देश से लड़ाई करता है; और जब आपस में गुत्थम-गुत्था हो जाते हैं: तो फिर दूसरे देशों में बैठ कर सुलह की जाती है। जिस क्षेत्र की समस्यायें होती हैं, उस क्षेत्र में रह कर; और उलझती जाती हैं। इसलिए एक-दूसरे क्षेत्र में जाकर समस्याओं का समाधान होता है।

इसीलिए भवगान ने कहा कि यदि धर्म की समस्यायें तुम सुलझाना चाहते हो: तो ज्ञात कर लो कि धर्म सत्ता क्या है? और उसके अनुभव करने के लिए ''निस्त्रैगुण्योभव''-त्रिगुणातीत भावातीत हो जाओ: तब उस धर्म सत्ता से परिचय हो जायेगा। तब फिर क्या होगा? जब मन बाहर आयेगा तो धर्म सत्ता से परिचित होकर आयेगा। तब सहज, स्वाभाविक धर्मानुसारी काम होंगे। ❑

खाली दोनों हाथ

✍ डॉ० रामनिवास 'मानव'
706, सैक्टर 13, हिसार

जिसने भी चाहा यहां, जीना सच के साथ।
निपट अकेला; वह मिला, खाली दोनों हाथ॥
सत्य अकेला; झूठ के, जाने कितने मीत।
फिर भी हरदम झूठ ही, रहता है भयभीत॥

सच्चाई पर झूठ का, चले नहीं जब मंत्र।
बनकर तब वह मंथरा, रचती है षड़्यंत्र॥
मानसरोवर में लगी है, बगुलों की भीड़।
आहत होकर हंस अब, ढूंढ़ रहे हैं नीड़॥
माया से जिनका बना, नहीं कभी संयोग।
लक्ष्मी को वे भी यहां, सदा लगाते भोग॥
लंगड़ी दौड़ विकास की, बंधे देश के पांव।
शहर-शहर बढ़ते गए, गए पिछड़ते गांव॥
ज्यों ज्यों बढ़ी विकास-दर, त्यों त्यों बढ़े गरीब।
सचमुच मेरे देश का, कितना अजब नसीब॥
कुछ के हिस्से भूख है, कुछ के हिस्से भीख।
कुछ के हिस्से दर्द है, कुछ के हिस्से चीख॥
तड़प-तड़प कर भूख से, निकले जिसके प्राण।
मरने पर उसको मिला, लाखों का अनुदान॥
जब तक जारी है यहां, तुष्टिकरण का राग।
तब तक बुझनी है कठिन, आरक्षण की आग॥
हावी है बैताल-सा, सिर पर भ्रष्टाचार।
घोटालों की संहिता, लगती है सरकार॥
घर हो या बाजार हो, या फिर होटल ताज।
कोई भी इस देश में, नहीं सुरक्षित आज॥
चिढ़ा रहे क्यों देश को, अफ़ज़ल और कसाब।
सबको चिंता वोट की, मांगे कौन हिसाब॥
पृष्ठ पलट कर देख लें, साक्षी है इतिहास।
पनपे हैं इस देश में, मात्र विरोधाभास॥

अपने अन्दर जुड़ने का एकमात्र साधन है: ध्यान

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (01662-246415)
1645, अर्बन एस्टेट-II, हिसार

आज के युग में तनाव बढ़ रहा है। सच्ची खुशी तो रही नहीं। जीने का मजा भी नहीं रहा। ऐसे में भगवान से योग अर्थात् ध्यान ही आदमी को बचा सकता है। दुनिया भर के दु:ख और संताप की आग को कम करने की एकमात्र दवाई: बस 'ध्यान' ही है।

बार-बार अपनों की चोट से आदमी का दिल रोता है

और न जाने क्या-क्या बातें दिन भर होती हैं? जो मन को भारी करती हैं। हर आदमी हर समय सुख की तलाश में रहता है। फिर भी सुख नहीं मिलता। इसका कारण उसकी तलाश सही नहीं; और दृढ़ विश्वास नहीं। अत: अदमी एक भगवान: जो सर्वशक्तिमान है, उस पर भरोसा रखे। सारे दु:ख उसी के ध्यान करने से मिट जाएंगे।

इस पूरे ब्रह्माण्ड में ईश्वर की शक्ति के बिना कुछ भी नहीं है। कण-कण में उसी का वास है। नाते-रिश्ते भी तभी तक हैं: जब तक प्रभु की शक्ति है। वह निकली तो सब खत्म। उसी शक्ति से सब जुड़े हुए हैं: अर्थात् सुख-दुख, नाते रिश्ते। तभी अकसर यह बोला जाता है: कि न कुछ ''मेरा, न कुछ तेरा: सब कुछ उस भगवान् का। धरती उसकी, अम्बर उसका; और सब कुछ उसी महान् का।'' इसलिए हमें हर पल उसको याद रखना है। याद तभी रहेगा: जब हम कम से कम दिन में तीन-चार बार आराम से बैठ कर: दुनियां के सब काम छोड़ कर, एक बार उसका नाम लेकर: कुछ समय के लिए बैठें। उस प्रभु से हमारा सीधा सम्पर्क हो। बस ध्यान ही एक ऐसा तरीका है: जिससे हम भगवान् से सीधा मिल सकते हैं।

अगर हम थोड़ी-थोड़ी देर के लिए विश्राम करने का स्वभाव बना लें।

अकेले होने का स्वभाव बना लें: तो हमें अपने में ही, कहीं बाहर नहीं: प्रीतम की प्राप्ति हो जाएगी। सब कामों के अन्त में:सोते समय; और सोकर उठते समय या जो कोई काम करो, उसके पहले और अन्त में: जो मनुष्य भगवान् को याद कर लेता है: उसको मरते समय भगवान जरूर याद आ जाएंगे।

मनुष्य जीवन केवल जीव के कल्याण के लिए मिला है: इसको पाकर कल्याण की प्राप्ति कठिन मानना: भारी भूल है। जीवन का अन्तिम अनुभव यही है: कि श्रम के बिना, वस्तु के बिना, साथी के बिना: हम सबको सिद्धी मिल सकती है।

सत्य का मार्ग इतना तंग है: कि उस पर आप अकेले ही जा सकते हैं। इसलिए इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के साथ रहने का मोह छोड़ दें। इनके साथ रहकर आप उस तंग रास्ते पर नहीं चल सकते। अकेले होने पर मार्ग अपने आप दिखाई देगा। जो किसी का नहीं, जिसका कोई नहीं: उसके भगवान् अपने आप हो जाते हैं। क्योंकि वे अनाथ के नाथ हैं।

इच्छाओं के रहते हुएं प्राण चले गए तो मृत्यु हो गई। और प्राण रहते हुए इच्छाएं चली गईं: तो मुक्ति हो गई।

अगर इन्द्रियां संसार की हो जाती हैं: तो अपराध क्या है उनका? संसार की जाति भी है। लेकिन आप क्यों संसार को पसन्द करते हो? जबकि आप भी तो भगवान् की जाति के हैं। सफैद रंग शान्ति का प्रतीक है। सिर के बाल जब पक जाएं, सफैद हो जाएं: तो शान्त रहने की आदत बनाना।

क्योंकि कफन का रंग भी सफैद ही होता है। प्रसन्नता परमात्मा का वरदान है: जो केवल मनुष्य को उपहार मे ंमिला है।

प्रसन्नचित्त रहना: मनुष्य का वास्तविक स्वभाव है। बनावटी दिखावट इंसान को बेचैन करती है। सरलता, सहजता और सादगीपूर्ण जीवन में ही सुख-शान्ति का वास होता है। ❑

स्वरूप का ध्यान

(Self Realization)

✍ **आचार्य श्री महाप्रज्ञ**

ईक्ष धातु से बने शब्द प्रेक्षा का अर्थ है: गहराई में उतरकर देखना। आत्मा के द्वारा आत्मा की सम्प्रेक्षा (Self Realization) करना। अर्थात् मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखना अथवा स्थूल मन को देखना। अथवा सथूल चेतना द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखना। यह देखना ही ध्यान का मूल तत्व है।

चेतना का लक्षण है: जानना और देखना। सांसारिक भावनाओं और विकृतियों से आवृत चेतना में जानने और देखने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को विकसित करने का सूत्र है: जानो और देखो।

चिन्तन, विचार और पर्यालोचन करना बहुत गौण और बहुत प्रारम्भिक है। इसलिए साधना के क्षेत्र में यह साधक को बहुत आगे नहीं ले जाता।

अध्यात्म-चेतना के जागरण का महत्वपूर्ण सूत्र है: आत्मा के द्वारा आत्मा को देखना (Self Realization). देखते-देखते मन अभ्यस्त हो जाता है, सूक्ष्म और पारंगत हो जाता है। वृत्तियां या संस्कार जब उभरते हैं: तब उनके स्पन्दन स्पष्ट होने लग जाते हैं।

जब हम देखते हैं: तब सोचते नहीं हैं। और जब सोचते हैं: तब देखते नहीं हैं। विचारों का जो सिलसिला चलता है: उसे रोकने का सबसे अन्तिम साधन है देखना। आप स्थिर होकर अपने भीतर देखें। आप पाएंगे कि विचार स्थगित हैं और विकल्प शून्य हैं। भीतर की गहराइयों को देखते-देखते सूक्ष्म शरीर को देखने लगेंगे। जो भीतर के सत्य को देख लेता है: उसमें बाहरी सत्य को देखने की क्षमता अपने आप ही आ जाती है। देखना वह है: जिसमें केवल चैतन्य सक्रिय होता है। जहां प्रियता और

अप्रियता का भाव आ जाए: वहां देखना गौण हो जाता है।

जो देखता है: वह सम रहता है। वह प्रिय के प्रति अनुराग ग्रस्त नहीं होता और अप्रिय के प्रति द्वेष या दुर्भावना नहीं रखता। वह प्रिय और अप्रिय होने के ही प्रति निष्पक्ष और निस्प्रह भाव रखता है।

अप्रमाद या जागरूकता का भाव बहुत महत्वपूर्ण है। ध्यान का स्वरूप है: अप्रमाद, चैतन्य का जागरण या सतत् जागरूकता। जो जागृत होता है: वही अप्रमत्त होता है। जो अप्रमत होता है: वही एकाग्र हो सकता है। क्योंकि एकाग्रचित वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है। इसलिए एकाग्र होने के लिए जागृत और अप्रमत्त होना जरूरी है: जो हमें 'ध्यान' की ओर ले जाता है। यह हमें आध्यात्मिक साधना के सर्वोच्च शिखर से सहज समाधि तक ले जा सकता है।

यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है: कि अप्रमत्त व्यक्ति को कार्य के बाद उसकी स्मृति नहीं सताती। आदमी जितना काम करता है: उससे अधिक वह स्मृति में उलझा रहता है। भोजन या भजन करते समय भी अनेक बातें याद आती हैं। जिस समय जो काम किया जाता है: उस समय उसी में दत्तचित्त (लीन) रहने वाला साधक होता है। जहां शरीर और मन का सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता: वहां विक्षेप, चंचलता और तनाव होते हैं।

मनुष्य चंचल और मोहग्रस्त मन को प्रमाद से मुक्त रखने के लिए निरन्तर अभ्यास करके आत्मनिग्रह की स्थिति प्राप्त कर सकता है। अप्रमाद की कुशलता और आत्म निग्रह ही सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ उपाय हैं। ❑

श्रद्धा के विभाग

(सन्यासी गीता)

दैवी आसुरि भेद से, संपदा दो ही होय।
दैवी से मुक्ति मिले, आसुरि बन्धन जोय॥

क्षमा शान्ति धर्म धृति, छोड़ें मोह अज्ञान।
दया त्याग तप तेज को, दैवी सम्पद जान॥

काम क्रोध मद दम्भ जो, हिंसा मोह अज्ञान।
ये सब सम्पद आसुरि, दगा द्रोह अभिमान॥

श्रद्धा सहित जो यज्ञ करे, छोड़ वेद की रीत।
कह अर्जुन सुनियो प्रभु, निठा कैसी मीत॥

श्रद्धा तीन प्रकार की, होवे सहज सुभाय।
सात्विक राजस तामसी, कहें कृष्ण समझाय॥

सात्विक ईश्वर को भजे, तामस भूत प्रेत।
राजस बुद्धि वाले नर, राक्षस पूजन करेत॥

ओम् तत् सत्: ये ब्रह्म के नाम हैं तीन प्रकार।
वेद ब्रह्म और यज्ञ में, प्रकटे पहली बार॥

क्रिया यज्ञ तप दान में, पहले कहा ओंकार।
वेद ज्ञानी यह कहें, उत्तम प्रकार विचार॥

तत् शब्द उच्चारण कर, करें यज्ञ तप दान।
फल अभिलाषा त्याग दें, पावें पद निर्वान॥

शुद्ध भाव सत भाव से, सत् का करें विचार।
सभी मांगलिक कर्म में, सत् की गावें सार॥

–प्रस्तुति : अनु जैन, भिवानी

चैतन्य को जानें ?

✍ श्री अजय श्रीवास्तव

यह सम्पूर्ण सृष्टि परिवर्तन व विनाश के आधार पर टिकी है: इस सृष्टि के अंतर्गत जन्मा प्रत्येक प्राणी बीत रहे प्रत्येक पल के साथ सतत् परिवर्तित हो रहा है और अंतत: उसे मृत्यु की गोद में सो जाना है? अर्थात् जो कुछ प्रकृति से जन्मता है वह एक दिन पुन: प्रकृति में, धरती में लीन हो जाता है।

यही वजह है कि हमारे पूर्वजों, ऋषि मुनियों ने जीवन को नदी के सतत् प्रवाह की संज्ञा दी है।

एक क्षण के लिए हमें झटका लगता है। हमें जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास होता है, किन्तु कुछ देर बाद हम फिर सामान्य होकर पुन: अपने कामकाज में लग जाया करते हैं और मृत्यु को भुला देने की असफल चेष्टा करते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि अगर शरीर नश्वर है तो वह परमात्मा जो स्वआत्म रूप से हममें छुपा है: वह कहां है? क्या शरीर के साथ उसका भी नाश हो जाता है?

नहीं ऐसा नहीं होता है। जिस प्रकार घूम रहा पहिया एक ही स्थिर रहने वाली कील पर टिका होता है: उसी प्रकार हमारे भीतर भी आत्मा के रूप में परमात्मा छुपा है। जो न केवल समस्त परिवर्तन से परे है, बल्कि उसका नाश कभी नहीं होता।

यही वजह है कि आत्मा का पता न होने पर भी हमें कभी-कभी यह अहसास होता है: कि हम कभी मरेंगे नहीं। हम दूसरों को मरते देखकर कांप जाया करते हैं, क्योंकि हमने अपने शरीर को ही अपनी सत्ता मान

रखा है और शरीर के भीतर मौजूद चैतन्य का हमें पता नहीं होता।

हम भौतिक उपलब्धियों और बाहरी दुनिया की रंगीन चमक-दमक में खोए रहते हैं और हमारी चेतना अंतर्मुखी होने के बजाय बाहर की ओर यात्रा करती रहती है।

आजीविका के लिए भौतिक उपलब्धियां अनिवार्य हैं, किन्तु उसके पीछे पूरा जीवन गंवा देना और अपने भीतर छुपे चिन्मय की तलाश न करना जीवन रूपी अवसर को गंवा देने के समान है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नदी के सतत् प्रवाह की तरह हमारी जीवन ऊर्जा को उस परमात्मा रूपी परम ऊर्जा की तलाश होती है: तभी वह सतत् गतिमान रहती है। हम उसे बाह्य जगत की ओर ही प्रवाहित करते रहते हैं, जो कि एक गलत दिशा है।

प्रकृति : एक जीवन प्रवाह है

इस असीम विराट ब्रह्मांड को अगर हम ध्यान से देखें तो हमारी बुद्धि चकराने लगती है। ये पृथ्वी, पहाड़, पेड़, फूल, फल: सभी अपने आप में कितनी आश्चर्यजनक व्यवसथा समेटे हुए हैं। ये सभी जीवन से भरपूर आनंद से झूमते हुए प्रतीत होते हैं।

प्रकृति एक जीवन प्रवाह है, जिसमें दु:ख, अवसाद या निराशा का कोई चिन्ह नहीं: क्योंकि यह परमसत्ता को समर्पित है। इसकी अपनी कोई इच्छा या महत्त्वकांक्षा नहीं।

इसी तरह जो अध्यात्म के शिखर को छू लेते हैं, वे भी प्रकृति का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं। निराशा और दु:ख उनके जीवन से विदा हो जाते हैं। वे सत्-चित्-आनंद को महसूस कर: अपने आस-पास शांति, खुशी और आनंद की बरसात शुरू कर देते हैं।

सदियों से ऐसी दिव्यात्माएं इस संसार को यही अमर संदेश देती आ रही हैं: कि तुम भी फूल बनकर महको, सरिता बनकर बहो, ज्ञान के दीपक बनकर जगमगाओ, पंछियों की तरह चहको।

आप सभी के अंदर उस परम ज्ञान का शाश्वत उजाला फैले और आप भी प्रकृति का एक चैतन्य अंश बनें: यही मंगल कामना है हमारी। ❑

ध्यान योग क्या है ?

✍ श्री विजय कुमार अग्रवाल

आँख मींचकर बैठना और मन को स्वतन्त्र छोड़ देना, जिससे मन में समाये हुए संस्कार विचारों के माध्यम से बिना किसी बाधा के निकल सकें। यह ही मन अन्तःकरण की शुद्धि की प्रक्रिया है। इससे मन अपने अन्दर स्थित प्रभु की शक्ति के नजदीक होता जाता है। इसी को प्रभु की शक्ति से मिलन कहते हैं। इसी विधि को 'ध्यान' अथवा 'ध्यान-योग'- कहते हैं।

प्रकृति की कुछ क्रियायें स्वतः होती हैं। उनके उस होने में सहयोग प्रदान करना चाहिए; बाधा नहीं। जो व्यक्ति इन क्रियाओं के होने में जितना सहयोग प्रदान करते हैं, उनका जीवन उतना ही सरस होता जाता है।

प्रकृति की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं सूक्ष्म स्वत: होने वाली क्रिया मन में समाये हुए संस्कारों का निकालना है। प्रकृति की कुछ और स्वत: क्रियाएं होती हैं: जैसे-निद्रा, मलमूत्र निकासन आदि। प्रकृति की जो स्वत: क्रियाएं होती हैं: वे पूर्णतया प्रयासरहित होती हैं अर्थात् उसमें कोई प्रयास होता ही नहीं। जिस क्रिया में जरा-सा भी प्रयास होता है: इसका तात्पर्य

खूब अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि वह प्रकृति की स्वत: क्रिया हो ही नहीं सकती।

जिस प्रकार निद्रा पूर्णतया प्रयासरहित प्रकृति की स्वतः क्रिया है। ठीक उसी प्रकार जागृत अवस्था में, 'ध्यान-योग' पूर्णतया प्रयासरहित प्रकृति की स्वतः क्रिया है।

इसमें कोई प्रयास होना ही नहीं चाहिए। इसमें अगर जरा-सा प्रयास करना पड़ता है: इसका तात्पर्य यह है कि वह 'ध्यान-योग' है ही नहीं। इसका मतलब यह है कि जिस क्रिया में जरा-सा भी प्रयास होता है: वह क्रिया आपकी अपनी है, जिसमें आपका 'मैं' अर्थात् 'कर्त्तापन' कार्य कर रहा है। अत: कोई भी जरा-सी प्रयास करने वाली क्रिया, प्रकृति अथवा भगवान की क्रिया हो ही नहीं सकती। मन में समाये हुए संस्कार निकालने की सूक्ष्मतम क्रिया जो प्रकृति की स्वत: क्रिया है, में सहयोग देने के लिए दो-तीन बार आधा-आधा घण्टा आँख मींच कर मन को स्वतन्त्र छोड़कर बैठना चाहिए। जो व्यक्ति प्रकृति की इस क्रिया के होने में सहयोग प्रदान करता है: उसका जीवन, जीवन-रस से परिपूर्ण होता जाता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन ठीक उसी प्रकार से हरा-भरा हो जाता है: जैसे-जिस मात्रा मे पेड़ की जड़ से रस ऊपर की ओर जाता है; उसी अनुपात में उस पेड़ की हर डाल खूब हरी-भरी हो जाती है। अर्थात् अगर अन्दर से पेड़ का रस भली-भांति ऊपर नहीं जाता है; तब उस पेड़ की हर डाल हरी-भरी नहीं होती।

प्रकृति का अकाट्य नियम है: कि निर्जीव एवं जीवधारी प्रत्येक चीज का यह स्वभाव होता है कि जब भी उसे अवसर प्राप्त होता है अर्थात् स्वतन्त्रता प्राप्त होती है; वह जिसका

अंश है: उसी की ओर अग्रसर होने लगती है, क्योंकि उसके अन्दर अपने अंशों से मिलने की आतुरता होती है।

जैसे पानी अवसर पाते ही नीचे की ओर गिरता है। मोमबत्ती की लौ कितनी उल्टी कर दी जाए, लेकिन वह ऊपर की ओर अग्रसर होती है, क्योंकि वह अपने अंशों को सूर्य की आतुर होती है। ठीक इसी प्रकार-

जब भी मन को मौका मिलता है; अर्थात् जब भी उसको स्वतन्त्रता प्राप्त होती है: वह अपने अंशों से मिलने अन्दर की ओर आतुर होता है:

क्योंकि उसका अंशी परमात्मा सूक्ष्म शक्ति के रूप में मन के अन्दर स्थित है। मन उसकी ओर जाते समय अन्दर समाये हुए संस्कारों को विचारों के माध्यम से स्वयंमेव निकालता है। अत: ध्यान-योग के समय संस्कारों को विचारों के रूप में निकलने से घबराना अथवा भ्रमित नहीं होना चाहिए।

विचार दो प्रकार के होते हैं-एक तो वे: जो क्रमबद्ध एवं योजनाबद्ध सोचे जाते हैं। दूसरे वे: जो बिना किसी क्रम के ऊट-पटांग एवं ऊलजलूल प्रकृति के होते हैं। इनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता और वे: पुराने एवं नये दोनों ही हो सकते हैं।

जो पहले प्रकार के विचार हैं: ये व्यक्ति स्वयं सोचता एवं बनाता है। इसमें 'मैं' एवं 'कर्तापन' की मौजूदगी है। जब कि दूसरे प्रकार के विचार वे हैं: जिनमें कोई क्रम नहीं होता और जो कि स्वत: निकलते हैं। ये ध्यान-योग के समय उभरते एवं कटते हमारे संस्कार हैं। इसी को मन का निर्विषय होना कहते हैं: क्योंकि ऊट-पटांग विचारों को विषय नहीं कहा

जा सकता। विषय तो क्रमबद्ध विचारों की श्रृंखला को ही कहा जा सकता है।

'परमात्मा की शक्ति से', सोते समय मिलने को निद्रा कहते हैं और जागते समय मिलने को 'ध्यान-योग' कहते हैं।

सोते समय जो संस्कार विचार के रूप में निकलते हैं: उन्हें स्वप्न कहते हैं। जागते समय जो विचार निकलते हैं: उन्हें संस्कारों का उभार कहते हैं। किसी भी क्षेत्र का ज्ञान जागृत अवस्था में ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए भगवान् के क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए: जागृत अवस्था में आँख मींचकर बैठना होता है। बाहर के क्षेत्र: जैसे-पढ़ाई, खेल आदि का ज्ञान प्राप्त करना होता है: तो जागृत अवस्था में आँखें खोलकर उस क्षेत्र में विचरण करना होता है।

गहरी निद्र में 'मैं' और 'मेरा' नहीं रहता। और तब परमात्मा की शक्ति से मिलन होता है: जिसमें शरीर चार्ज हो जाता है।

उसमें से थकावट मिट जाती है एवं स्फूर्ति आ जाती है। लेकिन माया के प्रभाव से मुक्ति नहीं प्राप्त होती; क्योंकि भगवान का ज्ञान प्राप्त नहीं होता। किसी भी ज्ञान को जागृत अवस्था में ही प्राप्त किया जा सकता हे। अत: जब जागृत अवस्था में आँख मींचकर मन को स्वतन्त्र (छुट्टा) छोड़कर बैठते हैं: तब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। जिस मात्रा में भगवान के क्षेत्र में मन के गोते लगाने से, भगवान का ज्ञान प्राप्त होता है: उसी अनुपात में माया के प्रभाव से मुक्ति मिल जाती है। उतना ही हमारा 'मैं' एवं 'मेरा' कटता जाता है। अर्थात् उतना ही जीवन का माया से ग्रसित होना: कम हो जाता है। परिणाम स्वरूप: उतना ही जीवन प्रयासरहित होता जायेगा अर्थात् हरा-भरा होता जावेगा।

इस प्रकार जागृत अवस्था में मन का स्वतन्त्र रूप से अन्दर की दुनिया में विचरण करने को ही: ध्यान-योग कहते हैं।

मन जब परमात्मा के क्षेत्र में होता है: तब ही अन्दर के संस्कार विचारों के माध्यम से भागते हुए मन के रूप में निकलते हैं। इसका अर्थ यह हुआ: कि जब ऊटपटांग विचार स्वत: निकलें, तब मन परमात्मा के क्षेत्र में है।

'ध्यान-योग' अन्दर समाये हुए प्रत्येक प्रकार के विकारों को निकालता है।

जैसे-शरीर से मल, मन से आशक्ति, बुद्धि से भय एवं अंधकार तथा अहं से मिथ्या अपनत्व निकालता है। इसमें मन और बुद्धि निर्मल होने के साथ-साथ शरीर भी निरोगी बनता है: जिससे शरीर में कोई रोग टिक ही नहीं सकता। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-30 : होती मन या बुद्धि के , क्रिया सदा अनुकूल।
बुद्धिजनित सब खण्ड हैं, मन अखण्ड सुखमूल॥

मनुष्य की सारी क्रियाओं पर या तो बुद्धि का नियंत्रण होता है अथवा वे मन के अनुकूल होती हैं। बुद्धि उचित-अनुचित, लाभ-हानि इतयादि का विवेचन कर क्रियाओं को नियंत्रित करती है और मन अपने में वर्तमान ब्रह्म की शक्ति के अनुरूप अपनी रूचि के अनुसार स्वाभाविक क्रिया करता है।

मन की शक्ति अखण्ड की ही शक्ति होती है। यह ध्यान के अभ्यास न होने से कम होती जाती है और उसी अनुपात में

बुद्धि सबल होकर क्रियाओं को नियंत्रित करने लगती है तथा सर्वाधिक कष्टदायक और दुखद तनाव को जन्म देती और तनाव बढ़ाती रहती है।

ध्यान के नियमित अभ्यास से मन आत्मा की शक्ति से शकितशाली होता जाता है और क्रियाओं को अपनी रूचि के अनुसार गति देता रहता है। इसमें श्रम नहीं होता, तनाव के होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता और यह जीवन को हर तरह से सुख और शान्ति की ओर ले जाता है। बुद्धि की शक्ति खण्ड की सीमाओं को पार करने में असमर्थ है। साथ ही खण्ड के अनन्त पहलुओं में सबको एक साथ छू भी नहीं सकती।

दोहा-31 : शिक्षा तन की बुद्धि की, देता है संसार।
मन को शिक्षित ध्यान से: करें तो बेड़ा पार॥

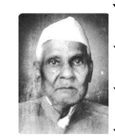

समाज में धीरे-धीरे ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा गायब हो गई और मनुष्य अब मात्र शरीर और बुद्धि के विकास में संलग्न रह कर उनकी शक्तियों के माध्यम से जीवन संवारने के प्रयास में संलग्न है। फलत: जीवन में दुख बढ़ने लगा। लेकिन इधर फिर कुछ वर्षों से ध्यान के माध्यम से मन को शिक्षित करने अर्थात् ब्रह्म-तत्व की शक्ति प्राप्त करने की शिक्षा उभर रही है। अगर इस शिक्षा का प्रसार (जैसा कि दिखाई देता है): होता गया, तो मनुष्यों के जीवन के प्रतयेक पहलू विकसित और सुखी होते जायेंगे।

आत्मा को केवल आत्मविकास के लिए ही शरीर धारण करना पड़ता है-विकास बिना त्रुटियों के होता ही नहीं। यह बात जीवन के किसी भी विषय पर अनुभव की जा सकती है।

यदि विषय जीवन हो: तो भी यही सत्य रहेगा। हर मानव की चेतना का विकास जागृत अवस्था से आगे भावातीत (Transcendental) चेतना, ब्राह्मी (Cosmic) चेतना और ईश्वरीय (God) चेतना से गुजरते हुए अद्वैत

(Unity) चेतना तक होना ही पड़ेगा। इसके लिए चाहे जितने जन्म लेने पड़ें। चाहे एक ही जन्म में आयु की वृद्धि के सहारे इस विकास को पूरा कर लिया जाए, चाहे शरीर बदल कर कई जन्मों में यह पूरा हो: आध्यात्मिक शिक्षा का यही लक्ष्य होता है।

शून्य से कुछ भी प्राप्त करने की शक्ति: अद्वैत चेतना में धीरे-धीरे बढ़ती है। 20-25 वर्ष इस अवस्था में रहने के बाद अपने आप शून्य से सब कुछ प्राप्त करने की शक्ति पैदा हो जाती है। तभी यह कहा जायेगा: कि अद्वैत चेतना का विकास पूरा हुआ। जिस काल में यह शिक्षा पूरी होती है: उस काल को ही सन्यास कहते हैं।

ऊपर के विवरण से यह आसानी से समझ में आ जाता है कि बिना क्षति के जंगल में रहने की शक्ति तो केवल अद्वैत चेतना की अवस्था में ही प्राप्त होती है। उससे पहले अपने कुटुम्ब में रहने की अवस्था में होने के कारण वह वहीं रहता है।

धीरे-धीरे आध्यात्मिक शिक्षा समाज से गायब हो गई: और लोग धीरे-धीरे बुद्धि के विकास के सहारे जीवन बिताने लगे। धीरे-धीरे चेतना की चारों अवस्थाओं का अर्थ भी बदलने लगा। बिना विवाह किए आचरण को बनाना: ब्रह्मचर्य का जीवन कहलाने लगा। विवाहित जीवन कुछ दिन (लगभग 25 वर्ष) बिताने के बाद ज्यों-ज्यों मनुष्य जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में शक्तिहीन होने लगता है-या यों कहें कि सेवा निवृत्ति अवस्था की ओर बढ़ने लगता है-वह अपने को वानप्रस्थ अवस्था में समझने लगता है। गलत फहमियां (Ignorance) इस हद तक बढ़ गईं कि केवल जोगिया वस्त्र पहन कर अपना कुटुम्ब छोड़ देने को ही सन्यास कहा जाने लगा। यह सारी गलत फहमियां चेतना के स्तर (Status of Consciousness) पर दूर हो जाएं: इसका एकमात्र रास्ता ध्यान (Meditation) है। ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 5 बजे से 7 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER